आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 5/अंक 2/जून 2025

Received: 14/04/2025; Accepted: 19/04/2025; Published: 28/03/2025

भरत से मम्मट तक : काव्यशास्त्र में काव्य-प्रयोजन की अवधारणा

डॉ. भँवर सिंह शक्तावत
सहायक प्राध्यापक,
बेंगलुरू ,जैन विश्वविद्यालय
फोन न .8792913646

डॉ. भँवर सिंह शक्तावत, भरत से मम्मट तक : काव्यशास्त्र में काव्य-प्रयोजन की अवधारणा आखर हिंदी पत्रिका, **खंड 5/अंक 2/जून 2025**,(55- 59) https://doi.org/10.5281/zenodo.15767476

This work is licensed under CC BY-NC 4.0

रचना की स्वायत्तता एवं प्रतिबद्धता जैसे प्रश्न साहित्य में विशेषकर प्रगतिवादी आंदोलन के साथ प्रकट होने शुरू हुए थे। इसीलिए कला की रचना-प्रक्रिया को लेकर जिस तरह का गहन चिन्तन आधुनिक हिंदी आलोचना में दिखाई पड़ता है वैसे गहन चिंतन का काव्यशास्त्रीय परंपरा में अभाव है। वस्तु व रूप के अंत:संघर्ष, विचार व भाव का सामंजस्य, कविता में सोद्देश्यता व यथार्थ का ग्रहण जैसे तत्वों पर चिंतन का यहाँ अभाव है। दरअसल कवि रचना-प्रक्रिया पर तभी ध्यान देने लगा जब रचना से 'कुछ अलग' होने की, 'करने की' माँग की जाने लगी। जैसा कि विदित है ; यह आग्रह साहित्य में मार्क्सवादी विचारधारा के प्रवेश के साथ शुरू होता है। इसलिए काव्यशास्त्रीय आचार्यों के यहाँ रचना-प्रक्रिया संबंधी विचारों को ढूँढ़ना तर्कसंगत नहीं लग सकता है। फिर भी हम संस्कृत आचार्यों की काव्य-दृष्टि का विवेचन करते हुए काव्य-प्रयोजन संबंधी उनकी स्थापनाओं में अन्तर्निहित रचना प्रक्रिया के सूत्रों का विश्लेषण कर सकते हैं- कविता का उद्देश्य ज्ञान देना भी है तो आनंद प्रदान करना भी यह सभी आचार्य लगभग मानते हैं। लेकिन 'रचना प्रक्रिया' या 'कला से जुड़ी समस्याओं' पर आधुनिक लेखकों ने जो विचार प्रकट किए हैं वहाँ उतने विस्तार और बारीकी से विचार का अभाव है। संस्कृत आचार्यों का जोर काव्य के 'सौंदर्य पक्ष' की ओर ज्यादा रहा इसलिए काव्य की आत्मा को लेकर जो बहस है उसमें उक्ति के सौन्दर्य पर ही बल दिया गया है। बावजूद इसके काव्य के उद्देश्य को लेकर नकार भी वहां नहीं है। इसके अलावा संस्कृत आचार्यों के बाद रीतिकालीन कवि आचार्यों ने जो काव्य संबंधी स्थापनाएँ दी है वह मुख्यतः संस्कृत आचार्यों की काव्य दृष्टि की नकल भर है। इनके यहाँ मौलिकता या नवीन उद्भावनाओं का सर्वथा अभाव है। आधुनिक काल में रचना प्रक्रिया संबंधी विवेचन छायावादयुगीन कवि आलोचकों (प्रसाद, पंत,निराला और महादेवी वर्मा) से थोड़ा व्यवस्थित ढ़ंग से शुरू होता है। इस अध्याय में संस्कृत आचार्यों एवं छायावादयुगीन कवि आलोचकों के साहित्य-दृष्टि का विश्लेषण करना उद्देश्य है।

अगर ऐतिहासिक क्रम से हम संस्कृत आचार्यों की काव्य-दृष्टि का विवेचन करें तो सर्वप्रथम आनेवाले आचार्य भरतमुनि ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'नाटयशास्त्र' में कुछ महत्वपूर्ण बातें काव्य के संबंध में कहीं है - भरतमुनि ने कोई एकमात्र उद्देश्य नाट्य का नहीं ठहराते हैं बल्कि वह इसके उद्देश्य को सर्वव्यापी बनाते हुए कहते हैं - "नाट्य धर्म में प्रवृत्त होने वालों के लिए धर्म का,काम सेवन करने वालों के लिए काम का, अज्ञानियों के लिए ज्ञान का और विद्वानों के वैदुष्य का, धनियों के लिए विलास, दुखियों के लिए उत्साह का वर्णन है।"1

मतलब यह कि साहित्य के अध्ययन से ढेर सारे प्रयोजनों को एक साथ प्राप्त किया जा सकता है। इस जगत का कोई भी भाव उससे छुटता नहीं है।

अगर काव्य से इतने सारे प्रयोजनों की प्राप्ति संभव है तो फिर सवाल उठता है कि नाट्य या काव्य का उपजीव्य क्या है ? कहाँ से वह ये सब ग्रहण करता है? इस पर विचार करते हुए भरत मुनि एक महत्वपूर्ण बात कहते हैं - नाट्य लोक व्यवहार का अनुकरण करता है, "नाना प्रकार के भावों से संपन्न, नाना प्रकार की अवस्थाओं का निर्देष कराने वाला और 'लोकवृत का अनुकरण' कराने वाले इस नाट्य को मैंने बनाया है।"2 'लोकवृत्त के अनुकरण' पर गौर करने की जरूरत है। यह 'लोकवृत्त का अनुकरण' बाह्य जीवन जगत की नाट्य में उपस्थिति का स्वीकार है। यह केवल निजी अनुभव तक ही कला को सीमित रखना भर नहीं है बल्कि बाहरी परिवेश या यथार्थ को रचनात्मक रूप से अभिव्यक्त करना भी है। यही नहीं आगे वे यह भी कहते हैं - " यह नाट्य धर्म, यश और आयु प्रदान करने वाला, हितकारी बुद्धि को बढ़ाने वाला और लोक को उपदेश देने वाला होगा।"3 स्पष्ट है नाट्य जनमानस को करणीय एवं अकरणीय के प्रति विवेकवान भी बनाता है। अतः भरत की काव्य दृष्टि समाज सापेक्ष है। वे नाट्य रचना को कोरा निजी प्रयत्न या स्वान्तः सुखाय कहते हुए उसे तत्कालीन परिवेश से बाहर नहीं ले जाते। यह बाह्य परिवेश नाट्य में किस तरीके से अभिव्यक्त होता है; इस बारे में वे कहते हैं - "यह जो लोक का सुख दुःखमय स्वभाव है वही आंगिक, वाचिक, सात्विक, आहार्य आदि अभिनयों से युक्त होकर नाट्य कहलाता है।"4 भरत जगत की सुख एवं दुःखमय प्रवृत्ति को ही नाट्य का उपजीव्य बतला रहे हैं। यह नाना जगत ही काव्य का स्रोत है। कहने का तात्पर्य यह है कि भरत के काव्य प्रयोजन संबंधी विचारों में लोक कल्याण का भाव अंतर्निहित है। वे इसी लिए इस सुख दुःख से समन्वित संसार को, अनेक रूपात्मक जगत को नाट्य का वर्ण्य विषय घोषित करते हैं। रचनाकार के दायित्व बोध की दृष्टि से उनके इन विचारों में यह बात भी निहित व प्रकट है कि वह सुख दुःख से युक्त इस संसार को अपनी रचना का वर्ण्य विषय बनाएं । भरत का अपने युग के प्रति यह एक यथार्थवादी दृष्टिकोण हैं ।

भरत के परवर्ती आचार्यों ने इतने विस्तार में जाकर काव्य के उदेश्य एवं काव्यवस्तु पर विचार नहीं किया है। आचार्य भामह, दण्डी ने काव्य प्रयोजन पर विचार किया है लेकिन इन दोनो आचार्यों का ज्यादा जोर अलंकार नियोजन पर ही रहा। उनका यह प्रसिद्ध श्लोक, 5तो काव्य के अध्ययन से चारों पुरूषार्थों की प्राप्ति तक की घोषणा करता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के अलावा इससे सभी कलाओं में सिद्धहस्तता एवं कीर्ति भी प्राप्त होती है। सामान्यजन इतना प्रवीण नहीं होता है कि वह शास्त्रों की गूढ़

युक्तियों का रहस्य समझ सकें। वह भी काव्य के अध्ययन से चारों पुरूषार्थों को प्राप्त कर सकता है। यही नहीं; 'अर्थ' की प्राप्ति भी साहित्य सृजन से होती है।

भामह-दण्डी का परवर्ती समय रीतिवादियों का है। वामन अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की तरह काव्य में अलंकार का होना तो स्वीकार करते हैं लेकिन 'सौंदर्य' की सत्ता को भी जरूरी मानते हैं। इसीलिए वह 'काव्यं ग्राह्यं अलंकारः' के बाद अपने द्वितीय सूत्र में 'सौन्दर्यमलंकार' कहते हुए काव्य में सौन्दर्य की स्थिति होना जरूरी मानते हैं। निश्चित ही सौंदर्य भी एक दृष्टि हैं जिसके आधार पर काव्य का मूल्यांकन होता रहा है। वामन ने काव्य तत्वों में सौन्दर्य और गुणों को अधिक महत्व दिया हैं।

आगे आने वाले आचार्य कुंतक ने अपने काव्य-विषयक दृष्टिकोण को थोड़ा विस्तार से प्रतिपादित किया हैं। वे काव्य को यथातथ्य वर्णन नहीं मानते हैं। इसके लिए वह उसमें 'कुछ और' की जरूरत बताते हुए यथातथ्य वर्णन का खण्डन करते हैं। वे कहते हैं "त्रिलोकी में स्थित पदार्थों का यदि यथातथ्य रूप में विवेचन किया जाता है तो उसमें अद्भुतता नहीं होगी क्योंकि किंशुक तो स्वभावतः लाल ही हुआ करता है।"6 तात्पर्य किंशुक को अगर लाल कहा जाता है तो यह एक सामान्य युक्ति है जिसमें काव्य तत्व का अभाव है। कुन्तक का जोर उक्ति की अद्भुतता में है न कि यथातथ्य वर्णन पर. यही अद्भुतता उस उक्ति को काव्य की गरिमा प्रदान करती है। कह सकते है कि यथार्थ का हुबहू वर्णन ही साहित्य का निकष नहीं हो सकता. इसके लिए उसे कुछ और होकर आना पड़ता है लेकिन इस सौन्दर्य के लिए वे कवि को वस्तु के मनमाने वर्णन की भी छूट नहीं प्रदान करते। कुंतक के काव्य प्रयोजन संबंधी विचारों का विश्लेषण करते समय उनके वर्गीयबोध की तरफ भी ध्यान देना जरूरी है क्योंकि उनके केन्द्र में आभिजात्य वर्ग की सौंदर्याभिरूचि ही है। इस संकुचन का ध्यान रखते हुए उनके विचारों का विवेचन किया जा सकता है। काव्य के प्रयोजन पर विचार करते हुए वे कहते हैं - "सुकुमार क्रम से कहा गया काव्यबंध धर्मादि (अर्थात धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष) के संपादन का उपाय अभिजातों के हृदय मे आह्लाद को उत्पन्न करने वाला होता है।"7 कुन्तक के वर्गीय दृष्टिकोण को छोड़ते हुए यह कहा जा सकता है कि काव्य, राजपुत्रों को 'क्या करना चाहिए' और 'क्या नहीं करना चाहिए' यह ज्ञान देते हुए उनमें श्रेष्ठ गुणों को भरता है। यह बात सामान्य-जन के लिए भी भी लागू होती है. साहित्य सामान्य-जन को भी भी करणीय अकरणीय का ज्ञान कराता हैं. यह तो कहा ही जा सकता है कि साहित्य में बराबर एक नैतिक मूल्य भी निहित होता है जो अपने माध्यम से संप्रेषित होता है। आगे वे कहते हैं- "लौकिक पुरूषों को किस ढ़ंग से व्यवहार करना चाहिए यह शिक्षा उन्हें काव्य में वर्णित राजा एवं उनके मंत्रिगणों के व्यवहारों से मिलती है।"8 शायद उस दौर में शासक वर्ग का इतना नैतिक पतन नहीं हुआ होगा और वे जरुर श्रेष्ठ आचरण करते रहे होंगे तो स्वाभाविक ही उनका आचरण साधारण जन के लिए अनुकरणीय होता रहा होगा। यह श्रेष्ठ आचरण लौकिक पुरुषों को काव्य के आस्वादन से मिलता था। काव्य में महापुरूषों, गुणीजनों के चरित्रों का गायन होता है जिससे साधारण जन को भी सीखने को मिलता है। असल में देखा जाय तो कुन्तक का जोर भी बाकी आचार्यों की तरह शैली की तरफ ज्यादा है। यही कारण है कि वचन की भंगिमा जिसे वे वक्रोक्ति कहते है उनके यहां 'काव्य की आत्मा' है।

कुन्तक के परवर्ती आचार्य मम्मट ने काव्य के 'निर्माण पक्ष' एवं 'ग्रहण पक्ष' के दृष्टिकोण से काव्य प्रयोजन पर विचार किया है। इस संबंध मे उनकी यह कारिका तो प्रायः उद्धर्त की जाती हैं -

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिवृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।। 9

यहाँ कुल छह: प्रयोजनों में से कर्तापक्ष से तीन प्रयोजन-यश की प्राप्ति, अर्थ प्राप्ति और अमंगल का नाश (शिवेतर) है। ग्रहीता अर्थात् पाठक या श्रोता के पक्ष से भी व्यावहारिक ज्ञान, रसास्वाद अर्थात् आनंद-लाभ एवं कान्तासम्मित उपदेश है। मम्मट के यहाँ भी काव्य सृजन का लक्ष्य सिर्फ आनन्द ही नहीं है। 'शिवेतरक्षतये' भी एक तरह से लोककल्याण की भावना से जुड़ा हुआ प्रयोजन है। यश और अर्थ को छोड़ भी दें; तब भी। व्यावहारिक ज्ञान भी ग्रहीता के भीतर नैतिक और सामाजिक मूल्यों के विकास में वृद्धि करता है।

आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी रचनाकार की इस लोकमंगलकारी दृष्टि के संबंध में लिखते हैं, "उत्तम कोटि की स्तरीय रचना रचयिता की व्यक्ति-चेतना लोक-चेतना से एक रस होती है-उसका हृदय लोक-हृदय का रागात्मक विस्तार विश्वव्यापी होता है। उसका हृदय लोक-हृदय होता है- अतः लोकमंगल उसके स्वभाव में होता है - लोकमंगल उसकी काव्य-प्रवृत्ति के केन्द्र में स्वभावतः होता है। उसकी इस प्रकृति का केन्द्र ग्राहक लोक (सहृदय) ही है। इसीलिए प्रयोजन का संदर्भ मुख्यतः ग्राहक का संदर्भ बन जाता है।"10 मतलब यह कि रचनाकार स्वभाव से ही लोक कल्याण के भाव से आबद्ध होता है और यह भाव नैसर्गिक रूप से उसकी रचना में प्रस्फुटित होता है। रचनाकार होना ही लोककल्याणकारी होना है . एक तरह से यह रचना में सामाजिकता की स्वीकार्यता हैं चाहे उसे जिस दृष्टिकोण से व्याख्यायित किया जाए।

अतः रचना को जीवन जगत की हलचलों से काटकर देखना संभव नहीं है. परोक्ष रूप से यह सभी ही स्वीकार करते दीखते हैं। काव्य का उद्देश्य आनन्ददान के साथ-साथ ज्ञानदान भी करना है और वह लोक से सर्वथा अछूता नहीं रह सकता यह भी स्पष्ट है।

सम्पूर्ण काव्यशास्त्रीय परंपरा के अवलोकन के बाद यह बात तो कही जा सकती है कि आचार्यों के मत में काव्य से आनन्द प्राप्ति ही नहीं बल्कि लोक-मंगल का भाव भी रचना से व्यंजित हो; यह लक्ष्य अप्रत्यक्ष रूप से ही सही लेकिन रहा है। भरत से पंडितराज जगन्नाथ तक के काव्य संबंधी विचारों में यह तथ्य बराबर मौजूद रहा है। भरत जैसे आचार्य ने तो 'लोकवृत्त के अनुकरण' को ही काव्य का ध्येय स्वीकार किया है।

सन्दर्भ सूची:

1 अबुधानां विबोधश्च वैदृश्य विदुषमपि।। ईश्वराणां विलासश्च स्यैर्यं दुःखार्दितस्यच अर्थोपजीविनामर्थो धृतिरूदिग्नचेतसाम्।। नाट्यशास्त्रम: भरतमुनि, सं. पारसनाथ द्विवेदी, पृ. 116

2. 'नानाभावोपसम्पनं नानावस्थान्तरात्मक लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मयाकृतम। नाट्यशास्त्र: प्रथम भाग, भरतमुनि, सं डॉ. पारसनाथ द्विवेदी, पृ. 116,

3. धर्म्य यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्धनम्। लोकोपदेशजननं नाट्यमेत˜विष्यति।। नाट्यशास्त्रम्ः भरतमुनि पृ. 117

योऽ्य स्वभावो लोकस्य सुखदुःखसमन्वितः। सोऽयांङगद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधियते ।। नाट्यशास्त्रम्ः प्रथम भाग, भरत मुनि, पृ. 128।

4."धर्मार्थकाममोक्षाणं वैचक्षण्यः कलासु च। करोति कीर्तिः प्रीतिं च साधुकाव्य निवेषणम्।।" भारतीय आलोचनाशास्त्रः डॉ. राजवंश सहाय 'हीरा' पृ. 106

5. यथातत्त्वं विवेच्यन्ते भावास्त्रैलोक्यवर्तिनः ।यदि तन्नाद्भुत् नाम दैवरक्ता हि किंशुकाः !! वक्रोक्तिजीवितम्: कुन्तक, व्याख्याकार श्री राधेश्याम मिश्र, एम. ए. पृ. 3

6. धर्मादिसाधनोपायः सुकुमारक्रमोदितः। काव्यबन्धोऽभिजातानां हृदयाह्नादकारकः।। वक्रोक्तिजीवितम्: कुन्तक, व्याख्याकार श्री राधेश्याम मिश्र, एम. ए., पृ.10

7. महतां ही राजदीनां व्यवहारे वर्ण्यमाने तदङगभूता सर्वे मुख्यामात्यप्रभृतयः समुचितप्रातिस्विक-कर्तव्यव्यवहार निपुणतया निबध्यामानाः सकलव्यवहारिवृत्तोपदेशतामापद्यन्ते। वक्रोक्तिजीवितम्: कुन्तक, व्याख्याकार श्री राधेश्याम मिश्र, एम. ए., पृ. 12-13

8. काव्यप्रकाशः मम्मट, व्याख्याकार-पंडित रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी, पृ. 112

9. भारतीय काव्य-विमर्शः राममूर्ति त्रिपाठी, पृ. 32

****